किरातार्जुनीयम्

संस्कृतमहाकाव्य के इतिहास में एक मात्र रचना किरातार्जुनीय (18 सर्ग) के लेखक होने पर भी भारवि की अतुलनीय ख्याति है, क्योंकि इन्होंने विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया। इन्द्र और शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न करके अर्जुन ने दिव्यास्त्र की प्राप्ति की यही इस महाकाव्य का वर्ण्यविषय है।

भारवि का काल — भारवि के विषय में बहिरङ्ग प्रमाणों से बहुत सी सूचनाएँ मिलती हैं। कालिदास का अनुकरण करने से ये उनके परवर्ती सिद्ध होते हैं। माघ पर भारवि का प्रभाव स्पष्ट है क्योंकि माघ ने इनकी रचना का अनुपद अनुकरण करते हुए इनसे आगे बढ़ने का प्रयास किया है। अतः कालिदास (400 ई०) तथा माघ (700 ई०) के बीच भारवि हुए थे। बाण (650 ई०) भारवि का उल्लेख नहीं करते। अनुमान होता है कि उससमय तक भारवि उत्तरभारत में प्रसिद्ध नहीं हुए थे। ऐहोल शिलालेख (634 ई०) में कालिदास और भारवि को प्रसिद्ध कवि के रूप में निर्दिष्ट किया गया है —

'स विजयतां रविकीर्तिः, कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः'।

इससे सिद्ध होता है कि भारवि 634 ई० से पहले दक्षिण भारत में प्रसिद्ध हो चुके थे।

दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरीकथा' मिली है जिसके आधारपर भारवि को दक्षिणभारतीय तथा पुलिकेशिन् द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन का समापण्डित कहा गया है। इस आधार पर भारवि का काल 600-615 ई० के आसपास माना जाता है। कुछ विद्वान 'अवन्तीसुन्दरीकथा' की सूचना को प्रामाणिक नहीं मानते। अंग्रेज विद्वान कीथ का कथन है कि भारवि 500 ई० के आसपास रहे होंगे। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रचित 'काशिकावृत्ति' में किरातार्जुनीय के एक पद्यांश

का उद्धरण है - 'संश्रय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः'। इससे सिद्ध होता है कि भारवि 600-650 ई० के बीच प्रसिद्ध हो गये थे, अतः इनका काल 550-600 ई० के बीच माना जा सकता है।

भारवि सम्भवतः पश्चिमसमुद्रतट के आसपास कहीं रहते थे क्योंकि सूर्य के समुद्र में अस्त होने का वर्णन इन्होंने स्वाभाविक रूप में किया है।

किरातार्जुनीय का वस्तुविन्यास - किरातार्जुनीयमहाकाव्य 18 सर्गों का है, इसमें शब्द की क्रीडा तथा पाण्डित्य-प्रकर्ष पूर्णतः प्रकट है। इसकी कथा महाभारत के वनपर्व से ली गई है। द्यूतक्रीडा में हार जाने पर युधिष्ठिर तपोवन में रहते हैं, वे दुर्योधन की शासन-नीति का पता लगाने के लिए एक वनेचर को गुप्तचर बनाकर भेजते हैं। प्रथम सर्ग में वह गुप्तचर दुर्योधन की प्रजापालननीति को जानकर आता है तथा उसकी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा करता है। द्रौपदी शत्रु की प्रशंसा से कुपित होकर राजा को खरी-खोटी सुनाती है, उन्हें युद्ध के लिए उत्तेजित करती है। द्वितीय सर्ग में भीम, द्रौपदी का समर्थन करते हैं कि पराक्रमी पुरुषों को ही समृद्धि मिलती है। युधिष्ठिर इसका प्रतिवाद करते हैं। सर्गान्त में व्यास का आगमन होता है। तृतीय सर्ग में व्यास अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र पाने का उपदेश देकर अन्तर्हित हो जाते हैं। व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन प्रस्थान करते हैं।

चतुर्थ सर्ग में इन्द्रकील पर्वत पर वे दोनों पहुँचते हैं, शरद ऋतु का भव्य वर्णन होता है। पञ्चम सर्ग में हिमालय का वर्णन है,

यक्ष अर्जुन को इन्द्रिय संयम का उपदेश देता है। षष्ठ सर्ग में अर्जुन की तपस्या आरम्भ होती है, इन्द्र उसमें विघ्न डालने के लिए अप्सराओं को भेजते हैं। सप्तम सर्ग में गन्धर्वों और अप्सराओं का वनविहार तथा पुष्पचयन वर्णित है। अष्टम सर्ग में उनकी जलक्रीडा का वर्णन है। नवम सर्ग में सन्ध्या चन्द्रोदय दूतीप्रेषण का वर्णन है। दशम सर्ग में अप्सराएँ असफल होकर घर चली जाती हैं। एकादशसर्ग में अर्जुन की सफलता देखकर मुनि वेश में इन्द्र आते हैं। वे तपस्या का कारण पूछकर शिव की आराधना का उपदेश देते हैं। द्वादश सर्ग में अर्जुन की तपस्या का वर्णन है। तपस्वी उनकी साधना से अभिभूत होकर शिव के पास जाते हैं। मूक नामक दानव शूकर वेश में अर्जुन को मारने आता है, किन्तु शिव किरात के वेश में अर्जुन की रक्षा करते हैं। त्रयोदश सर्ग में शूकर पर अर्जुन और शिव दोनों के बाण गिरते हैं। शिव का अनुचर कहता है कि शूकर मेरे बाण से मरा है, अर्जुन के बाण से नहीं। चतुर्दश से लेकर सप्तदश सर्ग तक अर्जुन और किरात वेशधारी शिव के बीच अनेक प्रकार के युद्ध का वर्णन है। अन्तिम सर्ग (18 सर्ग) में अर्जुन के युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर शिव अपना रूप प्रकट करके उन्हें पाशुपतास्त्र देते हैं।

किरातार्जुनीय का वैशिष्ट्य → इस महाकाव्य में मूल कथानक अत्यल्प है जो वर्णनों के कारण विस्तृत हो गया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर और आकर्षक संवाद, काल्पनिक चित्र तथा रमणीय वर्णनों के द्वारा कथा फलक को बहुत विस्तृत किया है। चतुर्थ पञ्चम सर्गों में ~~हिमालय तथा~~ शरद और हिमालय

का सप्तम से दशम सर्ग तक अप्सराओं के विहार का व्यापक वर्णन करते हुए भारवि कथासूत्र को छोड़ देते हैं। युद्ध के वर्णन में भी कई सर्ग लगे हुए हैं। परवर्ती महाकाव्यों के परिभाषा के अनुसार इसमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, जलक्रीड़ा, ऋतु युद्ध आदि के लम्बे वर्णन हैं। शृंगार के विविध विलासों का भी समावेश किया गया है।

इसका पन्द्रहवाँ सर्ग चित्रकाव्यमय है जिसमें कठिन प्रयास से होने वाली शब्दक्रीड़ा का विन्यास है। एक पद्य तो एक ही अक्षर 'न' से बना है। भारवि विचित्र मार्ग के प्रवर्तक कवि हैं। इस मार्ग में पाण्डित्य-प्रदर्शन और अलंकरण मुख्य हो जाता है। रस का उद्भावन विच्छिन्न होकर गौण स्थान ले लेता है। कथासूत्र को छोड़कर कवि परम्परागत वर्णनों को अपने काव्य का प्रमुख लक्ष्य मानने लगता है। भारवि ने किरातार्जुनीय की रचना इसी विचित्र मार्ग या अलंकार पद्धति के आलोक में की है। इसीलिए इस महाकाव्य में कथानक के समुचित विकास तथा रसोद्भावन ~~गौण हो~~ पर ध्यान नहीं दिया गया है।

जहाँ तक मुख्य रस का प्रश्न है इसमें 'वीररस' अङ्गी बनकर आया है। वीर रस का स्थायीभाव उत्साह है जो इस महाकाव्य में कई स्थलों पर प्रकट हुआ है। वनेचर जब दुर्योधन के शासन का वर्णन करता है तो उसमें नीतिवीर का अभिव्यञ्जन होता है। द्रौपदी के भाषण में वीररस की उद्दीपन सामग्री पर्याप्त है। अर्जुन की तपस्या के समय मूकदानव का आक्रमण तथा अर्जुन की प्रतिक्रिया अपने आप

में वीररस के उत्कृष्ट स्थल हैं।

किरातार्जुनीय के अंतिम पांच सर्गों में युद्धवीर का निरूपण है, जिसमें चित्रकाव्य उद्दीपन का काम करता है। इस वीर रस का उत्कृष्ट परिणाम तपस्या के फल की प्राप्ति के रूप में निरूपित है। यत्र तत्र अप्सराओं के विलास में शृंगार रस के संयोग और विप्रलंभ इन दोनों पक्षों का निरूपण है। इसप्रकार रस का उद्भावन यथास्थान भारवि ने किया है।

काव्यशैली — किरातार्जुनीय को संस्कृत की बृहत्त्रयी में प्रथम स्थान प्राप्त है, क्योंकि कलात्मक शैली का प्रवर्तन भारवि से ही हुआ है। कालिदास की वैदर्भी रीति एवं प्रसादगुण का अनुपालन करने पर भी भारवि की काव्यशैली परिष्कृत तथा पदलालित्य से युक्त नहीं है। व्याकरण के कुछ प्रयोगों से युक्त रूक्ष शैली भारवि की विशेषता है। इसीलिए टीकाकार मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को नारियल के फल के समान ऊपर से रूक्ष कहा है, भले ही वह भीतर से बहुत सरस है।

भारवि अर्थगाम्भीर्य के धनी हैं, इसी से उनके पाठक आकृष्ट होते हैं। संवादों की सहायता से उनका कथानक आगे बढ़ता है किन्तु वर्णनों में उलझ जाता है। नीतिशास्त्र, अलंकार शास्त्र और व्याकरण के पूर्णपण्डित भारवि 'प्रसन्न-गम्भीरपदा सरस्वती' को सद्वाणी का लक्षण मानते हैं। कई स्थलों पर उन्होंने अच्छी वाणी के लक्षण भी दिए हैं जिसमें शब्द-सौष्ठव, अर्थ की उदात्तता गुण के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं - 'स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी विनिश्चितार्थाकृति वाचमाददे।'

भारवि की प्रशंसा पण्डितों के समाज में अर्थगौरव के कारण बहुत अधिक की जाती है - 'भारवेरर्थगौरवम्'। यह गुण लोकव्यवहार राजनीति आदि से सम्बद्ध उनकी सूक्तियों में प्रकट होता है। उनका जीवनदर्शन इनमें झलकता है जैसे - 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः', 'सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः', 'विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः', 'सहसा विदधीत न क्रियाम्', 'गुरुतां नयन्ति हि गुणाः न संहतिः' इत्यादि। ये सूक्तियाँ भारवि की काव्यशैली को आकर्षक बनाती हैं।

भारवि का उद्देश्य → भारवि ने किरातार्जुनीयमहाकाव्य की रचना विचित्रमार्ग के प्रदर्शन के लिए की थी। यह विचित्रमार्ग पाण्डित्यप्रदर्शन के लिए होता था। भारवि के पूर्ववर्ती कालिदास आदि कवि सुकुमारमार्ग के अवलम्बी थे। उनकी रचनाओं में रसात्मक वर्णन की प्रधानता है। शास्त्रों के ज्ञान को दिखानेवाला वर्णन जो मूल कथानक के प्रवाह को रोक दे ऐसा उनकी रचनाओं में नहीं था। सुकुमार मार्ग में मूल कथानक सदा उपस्थित रहता है। विचित्रमार्ग में कथानक छूट जाता है और युद्ध, मन्त्रणा, चन्द्रोदय, रात्रि, प्रभात आदि के वर्णन प्रधान हो जाते हैं। भारवि का यही उद्देश्य था कि वे पाण्डित्य-प्रदर्शन वाला महाकाव्य लिखें। इसीलिए महाभारत के वनपर्व जो अर्जुन के तपस्या से प्रसन्न होकर शिव के द्वारा पाशुपतास्त्र देने की कथा है उसे भारवि ने अठारह सर्गों में फैलाया है। इसमें शैली का प्रकर्ष और पाण्डित्य की ऊँचाई महाकाव्य में कवि ने दिखाई है।

इसके कथानक के चयन में कवि का यह गौण उद्देश्य प्रतीत होता है कि तपस्या से दुर्लभ फल भी पाया जा सकता है। बड़े फल की प्राप्ति के लिए परीक्षा भी बहुत बड़ी देनी होती है।

—x—